National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(24): 141-146
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. अंशु सिंह झरवाल
हिंदी विभाग,
लक्ष्मीबाई कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
डॉ. अंशु सिंह झरवाल
हिंदी विभाग,
लक्ष्मीबाई कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रीतिकालीन नायिका के अनुभाव (कायिक) लालित्य का अध्ययन

डॉ. अंशु सिंह झरवाल

सारांश

श्रिंगारिक युग में सामन्त और जागीरदार भी बादशाह और राजाओं के ऐसो-आराम का जीवन यापन करते थे। कवि का पद राज दरबार में सम्मानजनक होता था। उसकी हैसियत किसी भी अन्दाज में एक जागीरदार से कम नहीं होती थी । राज्य की व्यवस्था में नौकरी या गरीबी या सामाजिक दायित्वों को पूरा करने की बेबसी के कारण धनार्जन करने, किन्हीं युवा पुरुषों को अपना घर-बार छोड़कर विदेश (दूसरे राज्यों) में जाना पड़ता था । परन्तु लौटने की अवधि किसी धनोपार्जक की निश्चित थी, तो किसी की नहीं होती थी। प्रिय के अत्यधिक दूर होने से नव वधू अपनी प्रेम-पीड़ा से विविध ऋतुओं में प्रतिदिन कष्ट पाती थी; अचेतन तक हो जाती थी। उस जमाने में सन्देसे तक भी मयस्सर नहीं हो पाते थे। परिणामतः काम-वेग, चातुर्य उत्पन्न कर, अपर दृष्टि से युग्मक बनाने में प्रयासरत रहता था और फिर छद्म का सहारा लेकर विरह को पराजित करता था।

रूढ़िग्रस्त और अशिक्षित समाज में बाल विवाह, बहु विवाह तथा अनैतिक सम्बन्धों का प्रचलन मर्यादाविहीन था। वृद्ध धनाढ्य भी नव तरुणियों से विवाह करते थे, जो अतृप्ति (अभिसार) का कारण बनती थी। निर्धनता में यौवन की देहली में आने वाली बालाओं को धनाढ्यों या पदासीन लोगों द्वारा अपहृत कर ली जाती थी या बादशाह/राजा की काम-पिपासा हेतु हरम में कूटनियों द्वारा पहुंचा दी जाती थी। असमान स्थिति से सामान्य जन के बहुत से युवक अविवाहित रह जाते और कामुक ऊढ़ा या नवोढ़ा की सहमति से बदचलन हो जाते थे।

बीज शब्द : रीतिकालीन नायिका, कायिक अनुभाव, लालित्य, यौवन, स्वकीया नायिका।

कवि की दृष्टि समाजीय वातावरण की हलचल के प्रति पूर्ण सजग थी। वह तरुण-तरुणियों के रूप-सौन्दर्य, अनुराग, हाव-भाव, प्रेम-पल्लवन, मिलनोत्कंठा, संकेत-स्थल, काम-केलि आदि का चमत्कारिक चित्रण काव्य रचना के लिए नहीं, बल्कि विलास में अवगाहित स्वामी (राजा) को भाव-विभोर करने के लिए करता था। कवि पुरस्कार स्वरूप धन या जागीरदार जैसे पद की लालसा में शृंगार रस का कोई कोना अछूता नहीं छोड़ता था। महत्वाकांक्षा की उच्चावस्था में अश्लीलत्व भी गुणरूप हो जाता था।

कला (काव्य सहित सभी कलाएँ), प्रकृति (स्त्री-पुरुष तथा अन्य), गुण तथा दृष्टा या श्रोता का नजरिया और भू-भाग की संस्कृति आदि सौन्दर्यानुभूति के स्तर को स्पष्ट करती हैं। वह स्तर जितना अधिक या कम होगा, उतने ही सुख (आनन्दानुभूति) की प्राप्ति होगी। आनन्द या रस की दशा में पहुँचाने के लिए मुख्यतया नायिका की आंगिक चेष्टाओं (हावों) का होना अत्यावश्यक है। 'भरत मुनि ने हाव को अनुभाव कहा है। ये आंगिक क्रियायेँ या चेष्टायें अभिनय को अनुभूति योग्य बनाती हैं। अनुभाव अंगभूत होने से भावों के साथ ही उत्पन्न व तिरोहित होते रहते हैं।'[1]

धनञ्जय हाव को शरीरज अलंकार मानते हैं । उनके चिंतन में हाव, युवती नायिका का एक विशेष अंग विकार है, जो उसके हृदयस्थ प्रेम को प्रकट करता है । हाव भाव के उद्रेक पर निर्भर करता है अर्थात् हाव भाव पर तथा हेला हाव पर निर्भर है ।'[2] शारदातनय ने मन आरम्भानुभाव के लक्षण बताते हुए हाव के बारे में कहा, कि :

"हेलाहेतु: स शृङ्गारो भावात्किञ्चित्प्रकर्षवान् ।
सग्रीवारेचको हावो नासाक्षिभ्रूविलासकृत् ॥"[3]

अर्थात् हेला का कारण तथा भाव कुछ श्रेष्ठ, नायिका में शृंगार रस का होना 'हाव' कहलाता है । यह हाव ग्रीवारेचक सहित नासिका, नेत्र, भौंह आदि में विकार उत्पन्न करता है । उन्होंने लीला, विलास, विच्छिति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायत, कुट्टमित, विब्बोक, ललित तथा विहृत ही स्त्रियों के शारीरिक अनुभाव तय किये हैं ।

आचार्य विश्वनाथ ने कहा, कि संभोग शृंगार में अपने प्रियतमों के प्रति नायिकाओं की लीला, विलास, विच्छित्ति, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मौग्ध, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित, केलि हाव स्वभाव सिद्ध और कृत्रिम भी होते हैं, जो दाक्षिण्य, मृदुता एवं प्रेम के अनुरूप होती हैं । इनमें पहले दश अलंकार पुरुषों में भी हो सकते है, परन्तु ये सब स्त्रियों में ही चमत्कारक होते हैं । वे स्पष्ट कहते हैं :

"भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु सम्भोगेच्छाप्रकाशक: ।"[4]

कि भृकुटि किंवा नयनों के विचित्र व्यापार से सम्भोग भावना का प्रकाशक और हृदयगत रतिविकार का किंचित् मात्र परिलक्षक भाव ही हाव कहा जाता है । भानुदत्त ने 'रसमंजरी' में कहा, कि स्वीया नायिका की चेष्टाओं को केवल पति या नायक ही जान सकता या सुन और देख सकता है । उसका कौतूहल, मुस्कराहट, स्वर होठ और क्रोध मन तक रहता है ।

संस्कृताचार्यों के मत और चिंतन पर विचार करने के पश्चात् समझ सकते हैं, कि पूर्व और पश्च के अधिकांश संस्कृतचार्यों ने भी हाव के सन्दर्भ में अपने मत लगभग उपर्युक्त भेदों के समान ही रखे हैं । आचार्यों के विचार जानने के उपरान्त, हिन्दी के रीतियुगीन कवि नायिका द्वारा कौशलपूर्वक की गई चेष्टाओं (हाव) को प्रेमासक्त जनों के हृदय में प्रेम का संचार करने वाली मानते हैं और उन्होंने नायिका के शरीरांगों की सांकेतिक क्रियाओं को शब्दों में अभिव्यक्त किया है । इन कवियों ने भी नायिका के अंगों से जनित मुख्यतः 10 ही हावों (भेदों) को मान्यता दी है । कवि देव ने हाव के दस रूपों का ही उल्लेख किया है :

"नारिन के संभोग ते, होत बिबिध बिधि भाव ।
तिनमें भरतादिक सुकवि, बरनत है दस हाव ॥"[5]

यहाँ उन्हीं काम-आवेग को बढ़ाने वाली नायिका की शारीरिक क्रियाओं (हाव के भेदों) का, जो मन के भावों का अहसास करवाती हैं – का सारगर्भित वर्णन किया जा रहा है । कुछ पदों के अंश का सरलार्थ पाठक की काबिलियत पर छोड़ दिया गया है ।

लीला

"कौतुक तें पीय की करै, भूषन भेष उन्हार ।
प्रीतम सों परिहास जँह, लीला लेउ विचारि ॥"[6]

अर्थात् जहाँ कौतुकवश प्रिया अपने पति का वेश धारण कर उससे परिहास करे, वहाँ लीला हाव होता है। धनञ्जय ने भी 'प्रियानुकरण लीला मधुराङ्गविचेष्टितै:' कहा है ।

देव कवि कहते हैं, कि राधा घने कुंज-वन में वंशी बजाती है, जिसे सुनकर कृष्ण दौड़े चले जाते हैं, उसे देखकर राधा के संग की सखियाँ हँसने लग जाती हैं :

"कालि भटू बनसीबट के तट, खेल बड़ो इक राधिका कीन्हो ।
सांझनि कुंजनि मांझ बजायो, जु स्याम को बेनु चुराइ कै लीन्हो ॥
दूरी तें दौरत देव गये, सुनि के धुनि रोसु महाचित चिन्हो ।
संग की औरै उठी हँसि के, तब हेरि हरि जू हँसि दीन्हों ॥"[7]

अन्यच

कवि बिहारी, ने भी निम्नांकित दोहे में लीला हाव को और अधिक स्पष्ट कर दिया है :

"राधा हरि, हरि राधिका बनि आये संकेत ।
दंपति रति विपरीत सुख सहज सुरतहू लेत॥"[8]

राधा कृष्ण का रूप-आभूषण धारण करके और कृष्ण राधा का सुन्दर रूप बनाकर सहवास हेतु संकेत स्थल पर आये हैं। इस प्रकार स्वाभाविक काम-केलि में भी विपरीत रति का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं ।

विलास

"प्रिय दरसनु सुमिरनु श्रवनु, जहँ अभिलाख प्रकाश ।
बदन मगन नयनादिकौ, जो विशेष विलास ॥"[9]

यानी प्रेमी के दर्शन, स्मरण अथवा गुण-श्रवण से नायिका के हृदय में जो अभिलाषा उत्पन्न होती है और उस अभिलाषा के परिणाम स्वरूप नेत्रों या शरीरांगों द्वारा मन मोहक चेष्टाएँ या क्रियाएँ की जाती हैं, वही विलास हाव की विशेषता होती हैं ।

देव ने नायिका की इस चेष्टा का चित्रण बड़ा ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है । अंधेरी रात में नायिका के अटारी पर चढ़ने से उसका गौर वर्ण बिजली सा चमक रहा था और उसका उल्लास और विलास भाव तो देव-स्त्रियों से भी बढ़कर था । उसके अंजन वाले नयन तो देखने वालों के दुखों को मिटाने वाले थे :

"आजु अटा चढ़ि आई घटानु मैं, बिज्जु घटा सी बधू बनि कोऊ ।
देव त्रिया कवि देवन केतिये, एतौ हुलास विलास न वौऊ ॥
पूरन पूरब पुन्यनते बड़भाग, विरंचि रच्यौ जन सौऊ ।
जाहि लखैं लघु अंजन दै, दुखभंजन ये दृगखंजन दोऊ ॥"[10]

और एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत है :

"आई ही खेलन फाग इहाँ, बृषभानुपुरा तें सखी संग लीनै।

त्यों पद्माकर गावतीं गीत, रीझावतीं भाव बताइ नबीनै।
कंचन की पिचकी कर में, किये केसरि के रँग सों अंग भीने।
छोटी सी छाती छुटी अलकैं, अति बैस की छोटी बड़ी परवीनैं॥"[11]

राधिका सखियों को साथ में लेकर कृष्ण के यहाँ फाग (होली के समय) खेलने आई है। गीतों में नवीन भावों से कृष्ण को रिझा रही हैं। हाथ में स्वर्ण पिचकारी लेकर कृष्ण के सारे अंगों को केसर के रंग में सराबोर कर दिया है। राधा अभी छोटी (वय:सन्धि) सी उम्र की है, परन्तु बड़ी निपुण है। उसने अपने काले घुँघराले बालों को लघु स्तनों वाली छाती पर लटका रखे हैं।

विच्छित्ति

"सुहाग रिस रस रूप तै, बढ़ै गर्व्व अभिमान।
थोरेई भूषण जहाँ, सो विच्छित्ति बखान॥"[12]

जिस नायिका को अपने प्रणय और रूप पर गर्व और अभिमान है, वह कुछ आभूषण पहनकर नाराज-प्रिय को अपने सौन्दर्य से आकर्षित कर ही लेती है।

विच्छिति हाव पर देव की दृष्टि का अवलोकन सराहनीय और आनन्ददायक है। अलबेली (चंचल-आकर्षक) नायिका में नायक के प्रति इतना प्रेम-गर्व है, कि रिझाने वाले सारे आभूषण-लेपन को छोड़कर, केवल एक मोहनलाल का आभूषण ही पहनती है। उनके शब्द-संयोजन अति सुन्दर बन पड़े हैं :

"भाग सुहाग को गर्व बढ़ौ, सु रहै अभिमान भरी अलबेली।
बेसरि बंदिन केसरि खौरि, बनावै न सेंदुर रंक सहेली॥
भूलेहूँ भूषन बेषु न और, करै कहि देव विलास की बेली।
मोहनलाल के मोहन कौ यह, पेंधति मोहनलाल अकेली॥"[13]

बिहारी की दृष्टि में -

"बैंदी भाल तंबोल मुख, सीस सिलसिले बार।
दृग आँजे राजे खरी, ये ही सहज सिंगार॥"[14]

नायिका ने ललाट पर बिंदी लगा रखी है, मुख में पान है, जिससे होठों की लालिमा निखर आई है और शिर पर मुलायम चिकने बाल हैं। नेत्रों में काजल आँजने से वह और भी सजीली लग रही है। ये ही उसके स्वाभाविक एवं चित्ताकर्षक सिंगार हैं।

विभ्रम

"बास बिभूषण प्रेम तें, जहाँ होहिं विपरीत।
दरसन-रस तन मन रसित, गनि बिभ्रम की रीत॥"[15]

नायक के दर्शनों की अतीव खुशी में नायिका को तन-मन की सुध नहीं रहती है, जिससे वह आभूषणों को उलटे-पलटे पहन लेती है, यही विभ्रम हाव की स्थिति कहलाती है।

कृष्ण के आने की बात सुनकर और देखने के उतावलेपन में नायिका ने उन्माद में होश खो दिया। उसने कमर में हार पहना, करधनी को गले में लटका ली, कलाइयों में पायजेब पहनी, पैरों में भुजाओं का आभूषण (पहुंची) और अंगिया पर अञ्चल डालना भूल गई। और गालों पर काजल लगा लिया तथा महावर से नेत्रों को सुन्दरता प्रदान की :

"कटि के तट हार लपेटि लियो, कल किंकिनी लै उर सों उरमाई।
कर नूपुर सों पग पौंची, रची अँगिया सुधि अंचल की बिसराई।
करि अंजन रंजित चारु कपोल, करी जुत जावक नैन निकाई।
सुनी आवत श्रीब्रजभूषन भूषन, भूषतहीं उठी देखन धाई॥"[16]

अपरंच, विभ्रम-चेष्टा का सौन्दर्य एक सवैयांश रूप में चित्रित है :

"बाँधि लई कटि सों बनमाल, किंकिनी बाल लई ठहराइ कै।
राधिका की रस रंग की दीपति संग की हेरि हंसी हहराइ कै॥"[17]

यहाँ, नायिका रातभर केलि करने के उपरान्त प्रात:काल आभूषणों को यथा विपरीत अंग-स्थानों में पहन लेती है, जिसे देखकर उसकी संग सहेलियाँ हँसने लगती हैं।

किलकिंचित

"श्रम अभिलास सगर्ब स्मित, क्रोध हर्ष भय भाव।
उपजत एकहि बार जहँ तहँ, किलकिंचित हाव॥"[18]

नायिका में जब काम, अभिलाषा, गर्व, मुस्कान, क्रोध, हर्ष, भय आदि भाव जब एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं, वहाँ किलकिंचित हाव होता है।

राधा के इन हाव स्थितियों का कवि केशवदास किन शब्द-चित्रों से सहृदयी जनों में रस का संचार करते हैं। वे सखी से कहलवाते हैं, कि तू किस खुशी में मग्न हो रही है। तू किसे देख हँसती है और किस पर क्रोध से आँखें चढ़ा लेती है; कभी तू लज्जाविहीन हो जाती है, तो कभी लज्जावश घूँघट में मुँह छुपा लेती है। इसके बावजूद तू किसकी बलैया ले रही है। इसी भाव-सौन्दर्य का चित्र-रूपण हुआ है :

"कौने रसै बिहँसै लखि कौनहिं, कापर कोपिकै भौंह चढ़ावै।
भूलति लाज भटू कबहूँ, कबहूँ मुख अंचल मेलि दुरावै।
कौन की लेति बलाय, बलाय ल्यौं, तेरी दसा यह मोहिं न भावै।
ऐसी तौ तू कबहूँ न भई, अब तोहिं दई जनि बाइ लगावै॥"[19]

बिहारी का सूक्ष्म अवलोकन रस को सिद्धि (स्वाद) प्रदान करता है :

"सुनि पग धुनि चितई इतै, न्हाति दिये ही पीठि।
चकी झुकी सकुची डरी, हँसी लजीली दीठि॥"[20]

नायक सखी से कहता है, कि मेरे पैरों से चलने की आवाज सुनकर और मेरी ओर देखकर, स्नान करती हुई तेरी सखी (नायिका) ने मेरी ओर पीठ कर ली। अचानक मेरे (नायक के) आ जाने से वह चौंक गई, अंगों में सिकुड़ गई, शर्मा गई और डर गई, परन्तु कुछ ही क्षणों पश्चात् उसकी लज्जाभरी आँखें हँसने लग गई अर्थात् प्रिय के आने का अहसास करके प्रसन्न हो गई। यहाँ एक ही बार (समय) में अनेक आकर्षक क्रियाएँ (चेष्टाएँ) उत्पन्न होने से किलकिंचित हाव कहा गया है।

मोट्टायित

"सौति त्रास कुल लाज तें, कपट प्रेम मन होइ।
सुमुख होइ चित विमुख हू, कहौ मोटायितु सोइ ॥"[21]

नायिका के मन में प्रेम होने पर भी, सौतों (अन्य प्रेमिकाओं) के भय और परिवार की लज्जा के कारण सामने आये हुए नायक से मुँह फेर लेती है। इसी को मोट्टायित हाव कहा है।

महाकवि देव ने कृष्ण से प्रेम करने वाली राधिका कुछ दिन से रूठी हुई है। वह न सुनती है, न बोलती है, न देखती है और न मन की बात भी किसी से कहती है। लोक-लाज से प्रेम प्रकट नहीं होने देती है, परन्तु नायक के प्रेम में सखियों के साथ मस्त होकर विचरण करती है, जो सौतों के कष्टकारक है। कवि के भावभिव्यक्ति का उदाहरण प्रेक्षणीय है :

"राधिका रूठी कछू दिन तें, कवि देव बधू न सुने कछू बोले।
नैकु चितौति नहीं चितु दै, रस हाल किये हूँ हियेहू न खोले ॥
आवति लोक के लाज के काज, यही मिस सौतिन कौ सुख छोले।
स्याम के अंग सौं अंग लगावै न, रंग में संग सखीन के डोले ॥"[22]

कवि की शब्द-शक्ति भाव मुद्रित करने में अद्वितीय है :

"पिय प्रीतक्रिया करै आँगन मैं, तिय बैठी सु जेठिन के थल मैं।
सुख के सुधि तें उमहैं अँसुवा, बहरावै जँभाइन के छल मैं।
न अघानी जऊ सिगरी निसि 'दासजू', कामकलानि कियो कल मैं।
अँगियाँ झखियाँ ललकैं फिरि बूडिबे कौं, हरि की छवि के जल मैं ॥"[23]

भाव है, कि प्रिय प्रिया के आँगन से मिलन-संकेत कर रहे हैं, लेकिन नायिका अपने परिवार के बड़े लोगों के मध्य बैठी हुई है। फिर भी मिलन-सुख का स्मरण करके उसके आँसू आँखों की पलकों में आ जाते हैं। वह जम्हाई लेती इधर-उधर डोलती है। काम-संकेतों की बैचेनी में ही सारी रात बीत गई, लेकिन तृप्ति नहीं मिली। आँखें परेशान-दुखी हो गयी हैं, लेकिन उनके रूप-सौन्दर्य के प्रेम जल में डूबने को लालायित हैं।

कुट्टमित

"कुच ग्रहन रद् दान तें, उतकंठा अनुराग।
दु:खहू मैं सुख होइ जहं, कुटमित कहु समाज ॥"[24]

काम-केलि की उत्तेजना में जब नायक, नायिका के स्तनों को दंत-क्षत कर देता है, तो नायिका को पीड़ा में भी सुखानुभूति होती है। यही, अनुराग प्रेरित नायिका की मुद्रा, नायक को और अधिक आकर्षित करती है, जो कुट्टमित अनुभाव के अंतर्गत आता है।

शृंगार रस में आकण्ठ डूबे कवि देव ने संयोग की विभिन्न स्थितियों की सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोदशाओं का निस्संकोच भाव से रंगीन चित्र गढ़े हैं। नायिका मुख से तो मना करती है, परन्तु रातभर संयोगानन्द चाहती है। दंतक्षत की पीड़ा होने पर भी नायक को नहीं रोकती है। वह आक्रांत रति-क्रीडा से कम्पित एवं भयभीत है, फिर भी नायक की छाती से लगी रहना चाहती है। कवि की छन्द-रचना इसी मौन-भाव को जाहिर कर रही है :

"नाह सो नाहीं ककै मुख सो सुख, सो रति केलि करै रतिया मैं।
देत रदच्छद सी सी करै, कर ना पकरै पै बकै बतिया मैं ॥
देव किते रति कूंजित के तन, कम्प सजे न भजे घतिया मैं।
जानु भूजानहू कौं भहरावति, आवते छैल लगी छतिया मैं ॥"[25]

अन्यच निष्णात कवि रसलीन ने किंचित् शब्दों में नायिका की इस क्रिया-चातुरी को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है :

"खिनि कुच मसकति खिनि लजति खिनि मुख लखति विसेखि।
छकित भयो पिय तिय हँसति उचकति ससकति देखि ॥"[26]

नायिका के स्तनों को मसकने पर क्षणभर लज्जित होती है, फिर वह नायक के मुख को अच्छे से देखती है (भावों को पढ़ती है)। केलि में नायिका को हँसते, उचकते और सिसकते देखकर नायक तृपित हो जाता है।

बिब्बोक

"ईठहु को अपमान जो, करै गरव गहि नारि।
ताही को बिंबोक तहँ, बरनत सुकवि विचारि ॥"[27]

जब नायिका गर्व (रूप और प्रेम) के कारण नायक को कृत्रिम अनादर दिखाती हो, तो वहाँ विब्बोक रस की उत्पत्ति होती है।

देव ने भावों का निरूपण विस्तारपूर्वक किया है, जिसमें आसक्ति के आवेग को तीव्रतम करने के लिए नायिका द्वारा की गई अवाक् क्रियाओं (चेष्टाओं) को भी वर्ण्य-विषय बनाया है। कृष्ण के प्रभात में आने पर, नायिका को सौतिन के साथ रमण करने की गंध आ रही है। नायक के बोलने पर वह क्रोध में पीठ फेर लेती है। तब भी वह ढीठ नायक सखियों से भौंहें नचाता (प्रेम भाव प्रकट करता) शोभित हो रहा है :

"स्यामले सौति के संग बसे निसि, आंगनि वाहि के रंग रचाइ कै।
आये इतै परभात लजात से, बोलत लोचन लोल लचाइ कै ॥
देव कौं देखि कै दोष भरे तिय, पीठि दई उत दीठि बचाइ कै।
ज्यो चितई अरसोहें रिसोहैं, सु सोहे सखीन के भौहें नचाइ कै ॥"[28]

सुधाकर पाण्डेय ने लालचन्द्रिका टीका में बिहारी के दोहे को समभाव रूप में उदृत किया है :

"विधि विधि कै निकरै, टरै नहीं परेहू पान।
चितै कितै तैं लै धरयौ, इतौ इते तन मान ॥"[29]

नायक के अनेक प्रयास करने पर भी तेरा मान (प्रेम का) विगलित नहीं हो रहा है। सखी कहती है, कि तेरे इस छोटे से शरीर में इतना बड़ा क्रोध कहा से भरा हुआ है।

ललित

"बोलनि हँसनि बिलोकिबो, चलनि मनोहर रूप।
जैसे तैसे बरनिये, ललित हाव अनुरूप ॥"[30]

नायिका के बोलने, हँसने, देखने और चलने की क्रिया में मन को हरने वाला सौन्दर्य हो, तो ललित हाव का प्रादुर्भाव हो जाता है। वन में, नायिका की उपस्थिति से, निसृत शरीर की सुगन्ध, चारों

ओर संचरित हो गई और उसके मधुर गायन से समस्त वन-कुंज गुंजायमान हो उठे तथा विमोहित होकर भौंरों ने भी गुंजार करना छोड़ दिया । उसके शरीर की कांति मशाल की भांति लग रही थी तथा वस्त्राभूषण धरण करने से वह सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ रही थी । जब पैरों की अंगुलियों के बिछियों के बजने की आवाज सुनी तो जान पड़ी, कि वह राधिका है :

"पूरि रहै पहिले पुर कानन, पौन के गौन सुगन्ध समाजनि ।
गान सौं गुंज निकुंज उठे, कवि देव सु भौरनि की भई भाजनि ॥
दूरि ते देखी मसाल सी बाल, मिली मुख भूषन बेष बिराजनि ।
जानि परि वृषभान सुता, जब कानन परी बिछियान की बाजनि ॥"[31]

भाव-चित्रण की अनूठी रचना-बंदिश कवि की प्रसिद्धि के लिए अप्रतिम है :

"छिनक चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम-गल डारि ।
चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जु-छटा सी नारि ॥"[32]

नायिका प्रियतम के गले में अपनी बाहों को डालकर, एक क्षण आगे बढ़ती है, फिर वह क्षण भर सहमति हुई ठिठक जाती है । इस चाल व स्थिति से वह अटारी (घर के ऊपर छपरनुमा) पर चढ़कर काले बादलों की घटाओं को देखती है । प्रिय के गले लिपटी हुई वह बिजली की झलक के समान सुन्दर लग रही है ।

विहित

"ब्याज लाज तें चेष्टा, औरे और विचारु ।
पूरै पिय अभिलाष तिय, ताही बिहित बिचारु ॥"[33]

जब नायिका लज्जा, चेष्टा या और कोई विचार (बहाने) से नायक की अभिलाषा को पूर्ण करती है, तब वहाँ नायिका का विहृत हाव परिलक्षित होता है ।

एक दिन राधा सखियों के साथ, सब शृंगार करके, मज़ाकिया तौर पर खेलने के लिए कृष्ण के यहाँ पहुँचती है । दोनों उल्लास से भरकर आनन्दित हो जाते हैं । इसी क्रीड़ा में छल से कृष्ण, राधा के अंगों का स्पर्श कर लेते हैं । तब वह भय के बहाने से भवन के अन्दर चली गई (संकेत, कि तुम अकेले में अन्दर आ जाओ) ।

"वृषभान की जाई कनहाई के कौतुक, आई सिंगार सबै सजि कैं ।
रस हास हुलास बिलासनि सौं, कवि देव जू दोऊ रहे रंजि कैं ॥
हरि जू हँसि रंग मैं अंग छुयों, तिय संग सखीनहू कौ तजि कैं ।
उठि धाई भटू भय के मिसि भामती, भीतरे भौन गई भजि कैं ॥"[34]

रस के कवि को अनुभाव-नैपुण्य अन्य कवियों से विलग करता है :

"स्याम विलोकत काम तें, भयो कम्प जो बाम ।
सीत नाम लै लाज तें, बैठी गई तेंहि थाम ॥"[35]

उपर्युक्त प्रमुख दश हावों के अतिरिक्त कुछ संस्कृताचार्यों-कवियों ने कुछ और हावों का भी वर्णन किया है । मुग्ध हाव में नायिका को चन्द्रमा की अमृतमयी चांदनी कला के तुल्य बताया है । वह मानो आकाश रूपी अगस्ति वृक्ष की एक कली हो, जिसमें सभी रोगों को दूर करने का गुण विद्यमान है । बोधक हाव में नायिका कृष्ण के प्रतिबिम्ब को, दर्पण में बिम्बित कर, उसे अपनी छाती से छुआकर शीतल सुख प्राप्त करती है । विक्षेप हाव में जब नायक की पतंग आकाश में उड़ रही होती है, तब नायिका उसकी छाया के स्पर्श-सुख लिए वह इधर-उधर दौड़ रही होती है है । मद हाव में नायिका का गदराया हुआ शरीर, ठुमका देकर चलने वाली चाल और उसकी चंचल आँखें, लोगों के हृदय को बेध रही होती हैं । तपन हाव में नायिका के अधरामृत का जिसने पान नहीं किया, उनका जीवन निस्सार है । लेकिन अधरों का पान करने पर वह बेसुध हो जाता है । चकित हाव में आकाश में काले बादल आने से अंधेरा चारों ओर फैल गया है । अब वह विरहिणी लतावत् आम्र वृक्ष (नायक) से त्वरित गति से जा लिपटी है । हसित हाव में नायक से मुंह मोड लेने से (मान करने से) बात नहीं बनती है, कारण, कि नेत्र हँसने (प्रसन्न) लगे हैं, तन प्रफुल्लित हो रहा है और अधर फड़क रहे हैं । इस तरह उसका मान करना मिथ्या हो गया है । कुतूहल हाव में नायिका कृष्ण की अचानक आने की बात सुनकर अध गुथे हार को हाथ में लिए दौड़ पड़ी । उस स्वर्ण-लता रूप नायिका दौड़ते समय अमंगलकारी वस्तु भी मधुर फल जैसी लगने लग जाती है ।

नायिका की अनुभावों या हावों या नि:शब्द चेष्टाओं का चित्रण रीतिकाल के शृंगारिक कवियों के शृंगार रस के ज्ञान की गूढ़ता को परिलक्षित करता है । केशवदास ने 'रसिकप्रिया' में राधा-कृष्ण के प्रेम में शृंगार (संयोग) समाहित है और उस संयोग-अभियान में नायिका के शरीर से उत्पन्न क्रियाएँ ही हाव कहलाती हैं :

"प्रेम राधिका कृस्न को, है तातें सिंगार ।
ताके भाव प्रभाव तें, उपजत हाव विचार ॥"[36]

मतिराम ने 'रसराज' में हाव को नायक नायिका के संयोग समय में प्रेम की अभिव्यक्तियाँ कहा है। भिखारीदास ने 'रससारांश' में 'सम संयोग सिंगार है, तिय कौतुक है हाव' कहकर हाव को परिभाषित किया है। पद्माकर के 'जगद्विनोद' के रस को पीने वाला कभी अघाता नहीं है। वे कहते हैं – "सात्विक भाव सु हाव घृत, आनन्द अंग विलास। इन्हीं तें रतिभाव को परगट होत बिलास ॥" जसवंतसिंह ने 'भाषा भूषण' में संयोग शृंगार के मध्य दम्पति के शरीर के द्वारा की गई अनेक प्रकार की चेष्टाओं को हाव कहा है ।

निष्कर्ष

अतः नायिका द्वारा स्भोगेच्छा में जानबूझकर की जानेवाली आंगिक क्रियाओं को दृष्टा या पाठकों को आत्म-विभोर तथा सहृदयी जनों को आह्लाद से प्लावित कर देने वाली कहा है । हाव में, नायिका के हस्त, अक्षि, अंग-मुद्राएँ, चेहरे के भाव, कमर, पैरों की गति, स्पर्श, अश्रू आदि की संकेत-भाषा में नायक से मिलन की तीव्र, अव्यक्त और प्रच्छन्न कामना होती है । इन श्रृंगारिक चेष्टाओं के अभाव में शारीरिक रुचि, आकर्षण, लालसा, भावनात्मक लगाव, उत्साह, प्रेम, उत्कण्ठा, मिलन, केलि, आनन्दानुभूति आदि संयोग की दशाएँ (संवेदनाएँ) जागृत नहीं होंगी। और बिना कायिक मधुर

संवेदनाओं के जीवन का सुख अभिभंग हो जायेगा।

सन्दर्भ-सूची

1. नाट्यशास्त्र (भाग-1), भरतमुनि, व्याख्याकार बाबूलाल शुक्ल, प्रकाशक चौखम्भा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण संवत् 2073, पृ. 374
2. दशरूपक, धनञ्जय, व्याख्याकार केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण संवत् 2074, पृ. 204
3. भावप्रकाशनम्, शारदातनय, भाष्यकार मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण सन् 2020, पृ.11
4. साहित्यदर्पण(प्रथम भाग),विश्वनाथ,व्याख्याकार हरेकान्त मिश्र,चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली; प्रथम संस्करण सन् 2017, पृ. 208-10
5. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004 , दोहा सं. 19, पृ. 70
6. वही, छंद 21, पृ. 70
7. वही, छंद 22, पृ. 71
8. बिहारी रत्नाकर, बिहारी, प्रणेता जगन्नाथदास रत्नाकर, प्रकाशक साहित्यागार, जयपुर; संस्करण सन् 2007 दोहा 155, पृ. 71
9. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, छंद 23, पृ. 71
10. वही, छंद 21 पृ. 71-72
11. जगद्विनोद, पद्माकर, संपादक विश्वप्रसाद मिश्र, वाणी-वितान प्रकाशन, वाराणसी, संवत् 2022, सवैया 435, पृ. 69
12. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, छंद 25, पृ. 72
13. वही, छंद 26, पृ. 165
14. लालचन्द्रिका, सुधाकर पाण्डेय, प्रकाशक नगरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, सम्वत् 2056, दोहा 252, पृ. 161
15. रसिकप्रिया (षष्ठ प्रभाव), केशवदास, टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2015, दोहा 30, पृ. 133
16. वही, सवैया छंद 31, पृ.133-34
17. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, सवैया छंद 28, पृ. 166
18. रसिकप्रिया (षष्ठ प्रभाव), केशवदास, टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2015, दोहा 39, पृ. 137
19. वही, सवैया छंद 40, पृ. 138
20. लालचन्द्रिका, सुधाकर पाण्डेय, प्रकाशक नगरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण सम्वत् 2056, दोहा 239, पृ. 156
21. भावविलास (तृतीयविलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, दोहा छंद 31, पृ. 169
22. वही, सवैया छंद, 32, पृ. 169
23. भिखारीदास ग्रंथावली (प्रथम खण्ड), संपादक विशावनाथप्रसाद, प्रकाशन नागरीप्रचारिणी सभा, काशी प्रथम संस्करण सम्वत् 2013, सवैया 265, पृ. 148
24. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, दोहा छंद 33, पृ. 170
25. वही, सवैया छंद 34, पृ. 171
26. रसप्रबोध, रसलीन, संपादक सुधाकर पाण्डेय, प्रकाशक नागरिप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2026, छंद 734, पृ. 140
27. चिंतामणी ग्रंथावली, संपादक सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रकाशक गौरव बुक्स, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, संन् 2012, दोहा 38, पृ.154
28. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, सवैया छंद 36, पृ. 172
29. लालचन्द्रिका, सुधाकर पाण्डेय, प्रकाशक नगरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण सम्वत् 2056, दोहा 253, पृ.161
30. रसिकप्रिया (षष्ठ प्रभाव), केशवदास, टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स ज्ञानवापी, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2015, दोहा 24, पृ. 131
31. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, कवित्त छंद 38, पृ. 137
32. बिहारी रत्नाकर, बिहारी, प्रणेता जगन्नाथदास रत्नाकर, प्रकाशक साहित्यागार, जयपुर; संस्करण सन् 2007, दोहा 384, पृ. 161
33. भावविलास (तृतीय विलास), कवि देव, अनुवादक दीनदयाल, नवलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2004, दोहा छंद 39, पृ. 176
34. वही, सवैया छंद 40, पृ. 176
35. रसलीन ग्रंथावली, रसलीन, सम्पादक सुधाकर पाण्डेय, प्रकाशक नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2026, छंद 733, पृ. 139
36. रसिकप्रिया (षष्ठ प्रभाव), केशवदास, टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स ज्ञानवापी, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2015, दोहा 15, पृ. 129